पाठ्यपुस्तकों के अन्तर्पाठ

राजाराम भादू

यह लेख राज्यों के सरकारी, निजी और धार्मिक समूहों द्वारा संचालित शालाओं में इस्तेमाल की जा रही पाठ्यपुस्तकों के विश्लेषण के लिए गठित जोया हसन समिति की रिपोर्ट के नतीजों और सिफारिशों को प्रस्तुत करता है।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (सी.ए.बी.ई.) ने एक समिति का गठन किया जिसने मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अन्तर्गत ऐसी पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा का कार्य किया जो केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सी.बी.एस.ई.) से संबद्ध स्कूलों से इतर राज्य सरकारों द्वारा संचालित स्कूलों एवं निजी स्तर पर चल रहे स्कूलों में पढ़ाई जाती है। डॉ. जोया हसन और प्रो. गोपाल गुरू की अध्यक्षता में 2005 में गठित इस समिति की रिपोर्ट को जारी हुए एक अर्सा हो चुका है लेकिन इस पर अपेक्षित विचार विमर्श नहीं हुआ है। इस समिति के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों में पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा के लिए उप-समितियां बनाई गईं। समिति को इन पाठ्यपुस्तकों के नियमन के लिए किसी तंत्र की अनुशंसा भी करनी थी। इसके लिए समिति ने कई शीर्षस्थ अकादमिक संस्थानों के निदेशक और शिक्षाविदों से उनकी टिप्पणियां मांगी। रिपोर्ट में पाठ्यपुस्तकों से जुड़े सभी आयामों और पहलुओं का गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

हमारी जानकारी में पाठ्यपुस्तकों पर यह पहला ऐसा विश्लेषण है जो इतना व्यापक और संदर्भ बहुल है। इसमें राज्य सरकारों में कार्यरत पाठ्यपुस्तकों के निर्माण तंत्र का जायजा लेते हुए उन पाठ्यपुस्तकों की गहराई से समीक्षा की गई है। इसी भांति पाठ्यपुस्तकों के निजी उद्योग का निर्मम आकलन किया गया है। रिपोर्ट के पहले अध्याय में इस अध्ययन का परिप्रेक्ष्य और विमर्श को निर्देशित करने वाले सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए हैं। दूसरा अध्याय शिक्षा नीति, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों की पारस्परिकता को व्याख्यायित करता है। तीसरे अध्याय में विभिन्न राज्यों में संचालित पाठ्यपुस्तक निर्माण के संस्थागत ढांचों का आकलन प्रस्तुत करता है। चौथे अध्याय में चुनिंदा पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु के विश्लेषण के जरिए चिंता के क्षेत्रों को रेखांकित किया गया है। आखिरी अध्याय में समिति की अनुशंसाएं हैं।

संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू.पी.ए.) सरकार ने शैक्षिक क्षेत्र में हस्तक्षेप के तौर पर पहला काम केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (सी.ए.बी.ई.) के पुनर्गठन का काम किया। इसके बाद इस बोर्ड के निर्देश पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2000 और उसके अन्तर्गत निर्मित पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा की लेकिन सी.बी.एस.ई. की संबद्धता से बाहर रहे स्कूलों की पाठ्य-सामग्री इस समीक्षा के दायरे से बाहर रहीं। यह दायरा सीमित नहीं था बल्कि सी.बी.एस.ई. से संबद्ध स्कूलों की संख्या से कई गुना बड़ा था जिसमें राज्य सरकारों, निजी संस्थानों और धार्मिक व जातीय समुदायों द्वारा संचालित हजारों की तादाद में स्कूल आते हैं जिनमें लाखों बच्चे अलग ही तरह

लेखक परिचय :

आगरा विश्वविद्यालय के का.मु. भाषा विज्ञान संस्थान से लोक संस्कृति एवं भाषा विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा। विकास अध्ययन संस्थान, बोध और दिगन्तर संस्थाओं के लिए शोध व प्रलेखन, शैक्षिक नवाचार और विकास की वैकल्पिक अवधारणाओं पर अध्ययन, दिशाबोध पत्रिका के संपादक, समान्तरः सेन्टर फॉर कल्चरल एक्शन एण्ड रिसर्च के कार्यकारी निदेशक (मानद)

पुस्तकें : शिक्षा के सामाजिक सरोकार, शिक्षा के संदर्भ और विकल्प (सह-संपादक), आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा

सम्पर्क :

समान्तर, 43, हिम्मत नगर, टोंक रोड, जयपुर-18

की पाठ्यपुस्तकें पढ़ रहे हैं। इन्हीं पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा और इनके नियमन तंत्र को सुझाने के लिए इस समिति की आवश्यकता अनुभव की गई। उल्लेखनीय है कि पाठ्यपुस्तकों में सांप्रदायिक आग्रहों के चलते ऐतिहासिक तथ्यों के विकृत प्रस्तुतिकरण को लेकर पूर्व में तीखी बहस चल चुकी थी। कई राज्यों की पाठ्यपुस्तकों से भी ऐसी शिकायतें मिली थीं। धार्मिक संस्थाओं द्वारा संचालित स्कूलों में प्रयुक्त पाठ्यपुस्तकों को लेकर भी गंभीर शिकायतें चर्चा में रही थीं। इसके अलावा इन पाठ्यपुस्तकों में जातिगत, वर्गीय और लैंगिक पूर्वाग्रह भी परिलक्षित हुए थे।

शिक्षा से यह अपेक्षा की जाती है कि यह शिक्षार्थी में आलोचनात्मक चिन्तन का विकास करे। धर्मनिरपेक्षता और तार्किक दृष्टिकोण इसकी विशेषता के रूप में अन्तर्निहित हैं। लोकतांत्रिक समाज शिक्षा की दिशा ऐसे समतामूलक आदर्श की ओर होनी चाहिए जो नागरिकों में विवेकशील सोच की नींव रखती हो। यद्यपि हमारे नीति-निर्माताओं ने शिक्षा के माध्यम से समता को हासिल करने के संकल्प व्यक्त किए हैं लेकिन शिक्षाक्रम में यह संकल्प उतर नहीं पाया है। यह रिपोर्ट इस पहलू पर पर्याप्त रोशनी डालती है।

जोया हसन समिति की यह रिपोर्ट संविधान और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के मापदण्डों पर आधारित है। इन मापदण्डों में विशेषकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति में वर्णित मुख्य पाठ्यक्रम क्षेत्रों से संबंधित अनुच्छेद 3-4 और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य एवं मूल्य शिक्षा से संदर्भित अनुच्छेद 8.1 से 8.6 को ध्यान में रखा गया है। इन मापदण्डों में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, भारतीय साझा सांस्कृतिक विरासत, बहुलवाद, लोकतंत्र, पर्यावरण संरक्षण और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी शामिल किया गया है। इन सरोकारों को लोगों के बीच समरसता बढ़ाने और संकीर्णता, हिंसा और अंध विश्वासों का प्रतिकार करने वाले तत्वों के रूप में देखा गया है।

पाठ्यपुस्तक समीक्षा के लिए राज्यों की उप-समितियों व विशेषज्ञों के प्रतिवेदनों में इस बात को अहमियत दी गई थी कि राज्य निकाय पाठ्यपुस्तक निर्माण और पाठ्यसामग्री के अनुमोदन में उपरोक्त सरोकारों को कितना ध्यान में रखते हैं। इन उप-समितियों ने समाज विज्ञान और भाषा की पुस्तकों की समीक्षा की है। इन विषयों में ये मुद्दे उभरकर आते हैं, समितियों ने इनके प्रस्तुतिकरण का आकलन किया है। राज्य की समितियों ने राज्यों के उन तंत्रों की भी समीक्षा की है जो राज्य सरकार और निजी क्षेत्र द्वारा संचालित स्कूलों में प्रयुक्त पाठ्यपुस्तकों का निर्माण व नियमन करने के लिए बने हैं। इस समीक्षा में इन तंत्रों की प्रकृति, कार्य पद्धति और प्रभाविता पर विचार किया गया है। भारतीय स्कूलों की शैक्षिक-प्रक्रिया में पाठ्यपुस्तकों की वर्चस्वशाली स्थिति है। इनके जरिये जहां विचारधाराओं को प्रसारित किया जाता है, वहीं ये मुनाफे के कारोबार का भी माध्यम हैं। सरकारी और निजी क्षेत्र के पुस्तक प्रकाशनों की विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित नीतियों और प्रकाशन प्रणालियों पर चलने वाली बहसों से इसका सहज अंदाजा लगाया जा सकता है। इनके नियमन की आवश्यकता भी अक्सर प्रतिपादित की जाती रही है।

केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्रालय शिक्षा नीतियां तैयार करने के लिए समितियां गठिन करता रहा है जिनकी रपटें केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (सी.ए.बी.ई.) और संसद के दोनों सदनों में रखी जाती रही हैं। इन नीतियों में प्रमुख हैं : 'शिक्षा और राष्ट्रीय विकास' (1964-66) और 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' (1986, 1990 में इसकी समीक्षा की गई)। इन्हीं नीतियों के आधार पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद राष्ट ्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एन.सी.एफ.) तैयार करती रही है। यह बिडम्बना है कि आम लोग शिक्षा के नीतिगत दस्तावेजों या राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा की तुलना में पाठ्यक्रम (सिलेबस) से ज्यादा परिचित हैं जिसमें वे पाठ वर्णित होते हैं जिनकी परीक्षा ली जाती है। पूर्व में राष्ट्रीय शैक्षिक अुनसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के अनुरूप तीन पाठ्यक्रम (1975, 1988 और 2002) जारी किए हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज 1968, 1986 और 2000 में जारी किए गए। इनमें 2000 वाले दस्तावेज में पूर्व नीति व्यक्तव्य नहीं था। राज्यों के स्तर पर कोई पाठ्यक्रम वक्तव्य जारी नहीं किया जाता। यह मानकर चला जाता है कि वे नए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज का अनुसरण करेंगे। लेकिन जोया-हसन समिति की प्रस्तुत रपट से पहले राज्यों में पाठ्यचर्या की स्थितियों पर शायद ही कभी गंभीर विचार विमर्श किया गया हो।

राज्य सरकारों ने शिक्षा आयोग (1964-1966) के बाद ही पाठ्यपुस्तक प्रकाशन के दायित्व पर ध्यान दिया लेकिन इसके बाद भी यह क्षेत्र काफी उपेक्षित रहा है। इसके पीछे विद्वानों में पाठ्यपुस्तकों के प्रति अरुचि, उत्कृष्ट प्रकाशनों का अभाव, महंगी दरें, पाठ्यपुस्तकों के चयन/निर्धारण में अनियमितता और शिक्षक संदर्शिकाओं की कमी जैसे कारक रहे हैं। अधिकांश राज्यों ने पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों से संबंधित विधेयक पारित किए हुए हैं तथा इनके निर्माण और अनुमोदन के लिए निकायों का गठन किया है। ये निकाय और इनकी प्रक्रियाएं अलग-अलग तरह की है। राज्य की उप-समितियों ने दर्ज किया है कि पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने के प्रावधान यांत्रिक हैं और वे राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा परिभाषित मुख्य पाठ्यक्रम सरोकारों को वास्तव में संबोधित नहीं करते। सर्वाधिक चिंता की बात यह है कि यह जांचने का वहां कोई तरीका

नहीं है कि पाठ्यपुस्तकें शिक्षा नीति के उद्देश्यों के अनुरूप हैं या नहीं। इनमें सामग्री के चयन को लेकर भी प्रायः सजगता नहीं बरती जाती। पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु और पूरक सामग्री को लेकर गंभीरता नहीं परिलक्षित होती। इन राज्यों में निर्धारित पाठ्य सामग्री के साथ-साथ अन्य पुस्तकों, शिक्षक संदर्शिका, प्रश्न बैंक और गाइडों को छापने वाला विराट उद्योग फल-फूल रहा है। इनकी कीमतें अक्सर मूल पाठ्यपुस्तकों से दोगुनी होती हैं।

धार्मिक और सामजिक संगठनों अथवा निजी लोगों द्वारा संचालित गैर अनुदानित स्कूलों के पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों का किसी भी रूप में नियमन करने वाली कोई एजेन्सी किसी राज्य में नहीं है। इनमें से अनेक स्कूल पाठ्यपुस्तकों के जरिए अपनी विशेष विचारधारा का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं जो कि बहुधा संविधान और शिक्षा नीतियों की संकल्पना और बुनियादी सिद्धान्तों के विपरीत जाती है। सबसे चिंताजनक बात यह है कि राज्य तंत्र द्वारा मुक्त छोड़े गए इस क्षेत्र का उपयोग सांप्रदायिक संगठन और उनसे संबद्ध स्कूल अपने पृथकतावादी सोच को फैलाने के लिए कर रहे हैं। इनके द्वारा प्रयुक्त पाठ्यसामग्री संविधान की मूल मान्यताओं और शिक्षा के उद्देश्यों को दरकिनार कर विकृत सोच और तथ्यों को प्रस्तुत करती है। स्कूली पाठ्यपुस्तकों में सांप्रदायिक पूर्वाग्रह इस तरह समाविष्ट किए जाते हैं कि इससे पुस्तकों की वैज्ञानिक गुणवत्ता और अकादमिक स्तर ही नीचे नहीं गिरता बल्कि देश के शैक्षिक स्तर की समग्रता और गुणवत्ता को इसके गंभीर दुष्परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं।

रिपोर्ट सुझाती है कि इस मुद्दे पर राष्ट्रीय दिशा-निर्देश जारी किए जाएं जो यह सुनिश्चित करें कि पाठ्यसामग्री संवैधानिक मूल्यों और राष्ट्रीय शिक्षा नीति में वर्णित उद्देश्यों के अनुरूप हो। राज्य सरकारें इन दिशा-निर्देशों की अनुपालना निजी शिक्षा संस्थानों में भी सुनिश्चित करें। रिपोर्ट में ऐसे तथ्य एवं उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं कि सांप्रदायिक संगठनों व भिन्न समुदायों ने सरकारी नियमन से छूट का किस तरह से बेजा फायदा उठाया है।

समिति ने विभिन्न राज्यों की चुनिंदा पाठ्यपुस्तकों की विशेषज्ञों से समीक्षा करवाई, इनमें बिहार, छत्तीसगढ़, दिल्ली, जम्मू-कश्मीर, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल की सामाजिक विज्ञान, हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं व अंग्रेजी की पाठ्यपुस्तकें शामिल थीं। इस समीक्षा के अन्तर्गत विशेषज्ञों को यह जानने के लिए कहा गया था कि क्या ये पाठ्यपुस्तकें (1) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, (2) केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड द्वारा अनुमोदित पाठ्यचर्या रूपरेखा, (3) भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान उभरी साझा संस्कृति की धारणा, (4) भारतीय राष्ट्रीयता के बहुजातीय, बहु-सांस्कृतिक और बहु-भाषी आधार, (5) संविधान में वर्णित मूल अधिकर व कर्तव्यों के विपरीत जाती हैं ? इस समीक्षा में पाया गया कि :

1. पाठ्यपुस्तकें भारतीय इतिहास, समाज और संस्कृति के समझने की जगह सांप्रदायिक विचारों को शक्ल दे रही हैं। इनसे बौद्धिक मानस का क्षरण हो रहा है। वे एक ऐसा 'इतिहास' पढ़ा रहे हैं जो मिथक, झूठे विवरणों और भारत की महानता के थोथे दावों पर आधारित है। संकीर्ण तर्क-वितर्क साझी संस्कृति समन्वयवाद और चिन्तन के क्षेत्र को अन-उद्घाटित छोड़ देता है। सबसे चिन्ताजनक बात अल्पसंख्यकों के विरुद्ध दुष्प्रचार है। ऐसे अंश ऐतिहासिक तथ्यों को नकारते हैं, भारत की साझा संस्कृति की अनदेखी करते हैं, संविधान द्वारा निषिद्ध जाति-व्यवस्था का पोषण करते हैं और हिंसा की संस्कृति को बढ़ावा देते हैं जो कि गैर कानूनी है।
2. मूल्य शिक्षा को भारत की विविधता और परम्पराओं के प्रति ग्रहणशील दृष्टि विकसित करने वाला और पर्यावरण पर मानवीय प्रभाव के बारे में व्यावहारिक समझ विकसित करने वाला होना चाहिए। मूल्य शिक्षा निर्देशों की बजाए संवाद के जरिए दी जानी चाहिए। यदि इसे निर्देशों के माध्यम से दिया जाएगा तो पारंपरिक सत्ता वर्चस्व को बल मिलने का खतरा रहेगा। इसके माध्यम से बच्चों में जाति और वर्गीय विभेद व असमानता के प्रति प्रश्न उठने चाहिए जिनका वे चुनौती के रूप में सामना कर सकें।
3. बच्चे के स्थानीय परिवेश की अनुपस्थिति पाठ्य सामग्री को संदर्भ से विच्छिन्न कर देती है। यहां तक कि राज्यों की पाठ्यपुस्तकों में क्षेत्रीय इतिहास के बहुत थोड़े अंश हैं। जन कल्याण, विकास और पर्यावरण संरक्षण की परियोजनाएं इस प्रकार प्रस्तुत की गई हैं कि बच्चे ये समझ नहीं सकते कि वे इनमें किस तरह सहभागिता या योगदान कर सकते हैं।
4. सभी राज्यों की रपटें बताती हैं कि पाठ्यपुस्तकें कुछ खास तबकों/समूहों की शक्ति और विशेष स्थिति को परिप्रेक्ष्य प्रदान कर किस प्रकार असमानता को पोषित कर रही हैं। पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु और चित्रण में ग्रामीण यथार्थ अथवा दलित व आदिवासी स्त्रियों को शायद ही कहीं जगह मिली हो।

शिक्षा की अन्तर्वस्तु का सवाल शिक्षण-पद्धति से भी जुड़ा है। स्थानीय पर्यावरण का सरोकार बच्चे के बौद्धिक विकास से है जो परिचित से अपरिचित की ओर बढ़ने के सिद्धान्त पर आधारित है। शिक्षाविदों ने साझा संस्कृति जैसे संश्लिष्ट विषय को सिखाने के सृजनात्मक तरीके भी सुझाए हैं। सरकारी पाठ्यपुस्तकों को

विकास योजनाओं की सूची या विवरणी प्रस्तुत करने से परे जाकर सरकारी नीतियों की तार्किक आलोचना की क्षमता विकसित करने में योगदान करना चाहिए।

प्रस्तुत रिपोर्ट पाठ्यपुस्तकों के विषयवस्तु-विश्लेषण के माध्यम से बताती है कि किस तरह धार्मिक संगठनों द्वारा संचालित स्कूलों में उनके द्वारा प्रकाशित अथवा प्रचलित पाठ्यपुस्तकें सांप्रदायिक पूर्वाग्रहों को उत्पन्न व विकसित कर रही हैं। इस मामले में हिन्दू कट्टरपंथी संगठनों को अग्रणी बताया गया है। इसके पीछे तर्क यह है कि इनके द्वारा तैयार पुस्तकों में हिन्दू धर्म के गौरवगान के अलावा अन्य धर्मों पर चोट की गई है। जबकि इस्लाम और ईसाई धार्मिक संगठनों द्वारा प्रयुक्त पाठ्यपुस्तकें अन्य धर्मों पर प्रहार करने से बचती हैं लेकिन अपने धर्म के महिमा-मंडन में कोई कसर नहीं छोड़तीं। यहां आलोचनात्मक विचार के लिए कोई जगह नहीं है। ईसाई शिक्षा संस्थाओं के बारे में कहा गया है कि ये कुछ विषय और उनसे संबंधित पाठ्यपुस्तकों के जरिए अपना एजेन्डा पूरा करते हैं जबकि बाकी पाठ्यपुस्तकों का बेहतर इस्तेमाल करते हैं, अधिकतर जगह केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से इनकी संबद्धता है। जबकि मुस्लिम मदरसों में जहां आधुनिकीकरण की प्रक्रिया जारी है, मुख्य विषयों की पुस्तकों के बहुत खराब अनुवाद किए गए हैं।

विषयवस्तु विश्लेषण में सांप्रदायिकता, लिंगभेद, जाति, आर्थिक असमानता, ग्राम-शहर के अंतर जैसे पहलुओं को परिलक्षित किया गया है। रिपोर्ट का प्रत्येक अध्याय गंभीर विवेचन के साथ विचारोत्तेजक मुद्दे उठाता है। इस पर विचार विमर्श शिक्षा-परिदृश्य में चिन्तन को और समृद्ध करेगा किन्तु यहां इसके लिए ज्यादा अवकाश नहीं है।

अंत में हम रिपोर्ट की सिफारिशों का संक्षेप में उल्लेख करना चाहेंगे। रिपोर्ट जोर देकर यह कहती है कि पाठ्य-सामग्री के अनुमोदन से पहले इसकी विशेषज्ञों द्वारा गंभीर छानबीन होनी चाहिए जिसमें लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और बहुलवाद जैसे सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाए। रिपोर्ट राष्ट्रीय पाठ्यपुस्तक परिषद के गठन की प्रस्तावना करती है जो पाठ्यपुस्तकों पर सतत निगरानी रखे। यह एक स्वतंत्र संगठन होगा जो स्वयं पाठ्यपुस्तकें तैयार नहीं करेगा। इस स्वायत्त संगठन में नागरिक समाज और बौद्धिकों का प्रतिनिधित्व हो। सामान्यजन भी इसमें पाठ्यपुस्तकों से संबद्ध शिकायतें व आपत्तियां दर्ज करा सकेंगे, परिषद उनकी जांच कर कार्यवाही सुझाएगी। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड एक स्थाई समिति का गठन करे जो पाठ्यपुस्तक निर्माण व उनकी समीक्षा के लिए दिशा-निर्देश तैयार करे। राज्य सरकार इन दिशा-निर्देशों के आधार पर अपनी पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन कराए। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद व राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषदों को इस दिशा में गंभीर शोध करने की आवश्यकता है।

इस रिपोर्ट के प्रसंग में दो बातें और कहनी हैं। इनमें एक इसकी अन्तर्वस्तु से संबंधित है। धार्मिक संगठनों द्वारा संचालित स्कूलों के तहत किए गए अध्ययन में सिख समुदाय द्वारा संचालित स्कूलों और उनमें प्रयुक्त पाठ्यपुस्तकों को सम्मिलित नहीं किया गया है। हमें नहीं लगता है कि इस समुदाय में प्रयुक्त कुछ पाठ्यपुस्तकें या पूरक सामग्री ऐसी होगी जो अन्य धार्मिक संगठनों से कहीं बेहतर कही जा सके।

दूसरी बात इस रिपोर्ट के प्रसंग में मौजूदा-शैक्षिक चिन्तन से संदर्भित है। हमने देखा कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 की अनुपालना में कुछ कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया। इन्हें केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने उन कक्षाओं में निर्धारित कर दिया। इन पुस्तकों के निर्माण में लगभग उन सभी मापदण्डों का यथासंभव निर्वाह किया गया जिन्हें जोया हसन समिति की प्रस्तुत रिपोर्ट रेखांकित करती है और इस प्रक्रिया में आवश्यक मानती है। इन पाठ्यपुस्तकों की अनेक ख्यात शिक्षाविदों और सुधीजनों ने सराहना भी की। लेकिन संसद में इन पर जिस तरह का विवाद हुआ और इस विवाद में जिस भांति सभी विचार सारणियों और रंगतों के राजनेता शामिल हुए, वह हमें सोचने पर मजबूर करता है।

यह सोच एक त्रासद विडम्बना की उपज है। विडम्बना यह है कि शिक्षा को एक संवेदनशील मुद्दा तो सभी मानते हैं किन्तु शिक्षा से संबद्ध मूलभूत सैद्धांतिकी से अधिकांश का घोर अपरिचय है। यह विडम्बना त्रासद इसलिए हो जाती है कि देश के सर्वोच्च सदन के जन प्रतिनिधि भी उक्त 'अधिकांश' में शामिल हैं। यदि वे चालाकी भी कर रहे हैं या किसी तरह के लोकप्रियता आधारित अवसर के शिकार हैं तो भी देश के भविष्य के लिहाज से तो ये अन्ततः उनकी अज्ञानता ही है। इस प्रसंग से पाठ्यपुस्तकों के सवाल की गंभीरता, संवेदनशीलता और समसामयिक चुनौती स्पष्ट हो जाती है। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत रपट सहित इधर का पाठ्यपुस्तक विमर्श एक ऐसा प्रस्थान बिन्दु है जिसे चिन्हित करने में हम पहले ही काफी देर कर चुके हैं। ◆